आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 1/मार्च 2022

Received: 21/02/2022; Accepted: 18/03/2022; Published: 24/03/2022

# "यथार्थवाद अवधारणा एवं स्वरूप"

डॉ. भागेश देवन
हिंदी भाषा अध्यापक
एम एम डी आर एस
गुंडलपेट
चामराजनगर-57111

डॉ. भागेश देवन, **"यथार्थवाद अवधारणा एवं स्वरूप"**,आखर हिंदी पत्रिका,खंड 2/अंक 1/मार्च 2022 ,(20-29)

यथार्थवाद आधुनिकता की देन है । यह वाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखता है। यथार्थवाद का जन्म सर्वप्रथम दार्शनिक विचारधारा के रूप में हुआ । यथार्थ में व्यक्तिगत दृष्टिकोण एवं चिंतन अनिवार्य है और जीवन की सच्चाई भी होनी चाहिए । इसमें जीवन को एक प्रेरणा देने का कार्य निभाना भी अनिवार्य है । उच्चकोटि का यथार्थवाद मानव समाज की पूर्ण इकाई के रूप में प्रयुक्त करता है । साहित्य का निर्माता एक संवेदनशील रचनाकार होता है । यह केवल वस्तुओं का चित्र ही अंकित नहीं करता, अपितु अपनी भावनाओं को वस्तु के साथ जोड़ता है ।

यथार्थवाद का उद्भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में हुआ । यथार्थवादी आंदोलन ने इस उद्भव में परंपरागत साहित्य तथा कलाओं का अनुशासन करने वाले भाववादी और आदर्शवादी चिंतन को आघात पहुँचाया । यथार्थवाद के उद्भव में फ्रांस की राज्यक्रांति का पूरा योगदान है । डार्विन के चिंतन ने 19वी शताब्दी को वैज्ञानिक धरातल प्रदान किया था । सन् 1838 में फोटोग्राफी के अविष्कार ने वस्तुस्थिति को यथावत प्रस्तुत करने की कला में पहल की थी । इसी समय पत्रकारिता का भी अविष्कार हुआ था । जिसके फलस्वरूप सामाजिक घटनाओं का वर्णन करने की प्रवृत्ति जागी । साथ ही साथ सूक्ष्म निरीक्षण करके सामाजिक घटनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास आरंभ हुआ ।

स्वच्छंदतावाद तथा शास्त्रीयवाद जिस समय संघर्षरत थे, उसी समय एक तीसरी शक्ति का उदय हुआ, जो यथार्थवाद के रूप में विकसित हुई । स्वच्छंदतावाद जब अपनी चरम सीमा पर था, उसी समय रचनाकार सामंतवादी व्यवस्था के परिणामों से क्षुब्ध हो रहे थे। स्वच्छंदतावाद रचनाकार शैली तथा सामंतवादी पूंजी व्यवस्था से खिन्न था । उसने अपनी रचनाओं में अमानवीय व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया और 19वीं शताब्दी के महत्वपूर्ण रचनाकार सत्य के प्रति कटिबद्ध होने लगे । यथार्थवाद अपने निश्चित सिद्धांत के रूप में कला और साहित्य के क्षेत्र में 19वीं शताब्दी में प्रकट हुआ । हम यह नहीं कह सकते कि

इस संबंध में निश्चित तिथि का देना कहाँ तक उचित है। किंतु सामान्यतः दो तिथियों का उल्लेख किया जाता है। "सन् 1855 में कोवै ने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया। इन चित्रों में यथातथ्य निरूपण की शैली व्यवहृत हुई। और उसके संबंध में 'रियलिज्म' शब्द का प्रयोग उसके निर्माता ने किया। इसके कुछ समय पश्चात सन् 1856 ई. में फ्लाबेयर का प्रसिद्ध उपन्यास 'मैडमबावरी' प्रकाशित हुआ।"[1] यह तिथि भी यथार्थवादी आंदोलन के आविर्भाव का संकेत देती है।

डॉ. सुरेश सिन्हा का भी ऐसा मत है- "यथार्थवाद का वास्तविक संबंध फ्रेंच यथार्थवादी स्कूल से है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1835 ई. में आदर्शवादी विचारधारा में विश्वास रखने वालों के विरुद्ध सौंदर्यवादी विवरण के रूप में हुआ था। बाद में इसका प्रयोग साहित्य में भी होने लगा।"[2]

आधुनिक पाश्चात्य साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा के विकास में कार्लमार्क्स के सिद्धांतों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। काडवेल ने इस संबंध में विस्तार से विवेचन किया है। रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में फ्लावेयर, ज़ोला तथा मोपासां आदि ने इसके विकास में योगदान दिया है। उन्होंने यथार्थवाद को एक प्रकृति के रूप में स्वीकृति दी। जिसके मूल में वस्तुओं के यथास्वरूप वर्णन की प्रवृत्ति है। इस रूप में इस विचारधारा का जो विकास हुआ उसे अन्य नाम भी दिए गए हैं। यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, अतियथार्थवाद आदि। एक विशिष्ट वाद के रूप में साहित्य में इसकी चर्चा प्रथम महायुद्ध के पश्चात से अधिक होने लगी थी। द्वितीय महायुद्ध तक पाश्चात्य साहित्य के क्षेत्र में इसका प्रचलन बहुत अधिक हुआ। वास्तव में प्रथम महायुद्ध में जो भयानक नरसंहार हुआ था, उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हीनता, निराशा और आश्रयहीनता की अनुभूति ने यथार्थवाद के भावी विकास की भूमिका प्रस्तुत की जो आक्रोश व विद्रोह से युक्त थी।

संबंध की दृष्टि से यथार्थ और आदर्शवाद एक दूसरे के पूरक हैं। मार्क्सवाद एवं प्रकृतिवाद में इस संबंध की अन्योन्याश्रयता का स्त्रोत निहित है। ज़ोला ने प्रकृति और समाज की निजी व्यवस्था को मान्यता प्रदान करते हुए यथातथ्य चित्रण की ओर संकेत किया है। यथार्थवादी साहित्यकार अपनी रचनाओं में मानव जीवन और मानव समाज का जो चित्र प्रस्तुत करता है उसका आधार कल्पना, भावना, आदर्श आदि का भाव जगत नहीं होता, बल्कि भौतिकतावादी जगत होता है। जिसकी यथार्थ सत्ता विद्यमान रहती है। एक यथार्थवादी कहानीकार मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करता है, जो अपनी यथार्थता के कारण ही विश्वसनीय तथा सजीव होता है। वह साहित्य को एक भावात्मक अनुभूति और मानसिक तृप्ति का विषय न मानकर जीवन को समाज के विकास के लिए एक सशक्त माध्यम मानता है। इस प्रकार यथार्थ वह है, जो साहित्य में वास्तविकता के रूप में चित्रित किया जाता है और वह यथार्थवाद भी इसी रूप में है जो उस यथार्थ पर साहित्य को एक विशिष्ट वैचारिक अर्थ प्रदान करता है। डॉक्टर राम अवध द्विवेदी ने लिखा है- "रियलिज्म इस स्टाइलिस्ट पिक्चर ऑफ रियालिटी इट इज रियलिटी पुट विदिन ऑफ फ्रेमवर्क।"[3] यथार्थ और यथार्थवाद के विषय में विभिन्न विद्वानों के जो मत है, वे इस तथ्य के परिचायक है कि यथार्थवाद यथार्थ परक साहित्य की एक शैली की विशेषता न होकर उसमें निहित एक

विशिष्ट विचारधारा है। यथार्थवाद यथार्थ की आधारभूमि पर जीवन का नूतन चित्र है। यथार्थवाद हृदय की वस्तु है और यथार्थ उसका मूल स्त्रोत है, जो अपनी विषयवस्तु जीवन के यथार्थ से ग्रहण करता है।

प्रसिद्ध यूरोपीय साहित्यकार एवं इतिहासकार कजामियों ने “यथार्थवाद को साहित्य में एक शैली न मानकर एक विचारधारा माना है।"[4] यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि यूरोप में मोपासां तथा ज़ोला जैसे कथाकारों ने भी यथार्थवादी आंदोलन के विकास में जो योगदान दिया वह उसकी इसी प्रवृत्तिगत विशेषता के कारण है।

यथार्थवादी लेखक अपनी रचना में सत्य को ज्यो-का-त्यों ही चित्रित नहीं कर देता, बल्कि व्यक्तिगत रूचि के अनुसार वस्तु जगत के दृश्यों को फिर से नये सिरे से सजाता है। ऐसा करने में वह अपनी व्यक्तिगत रुचियों अपनी अनुभूतियों का सहारा लेता है। यही कारण है कि एक ही वस्तु का चित्रण विभिन्न लेखक विभिन्न ढंग से करते हैं। इसीलिए भाव-जगत तथा वस्तु-जगत के सत्य में अंतर दिखाई देता है। यथार्थवाद वह साहित्य संश्लेषण है जो चुनाव तथा सर्जन के माध्यम से अपने यथार्थबोध को समुन्नत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करता है। सच तो यह है कि सत्य उस सिद्धांत के सदृश्य नहीं जिसे हम जब चाहे तोड़ लें। यह उभयपक्षीय होता है। लेखक को उसकी प्रकृति को समझाने से पहले उसके पक्ष विशेष को समझना पड़ता है। यह तटस्थ न होकर स्थिति विशेष का परिचायक है। आर. एल. स्टीवेंसन के अनुसार- “यथार्थवाद का प्रश्न साहित्य में मुख्यतः सत्य से अल्पांश में संबंध नहीं रखता, बल्कि उसका संबंध केवल रचना की कलात्मक शैली में है।"[5] यह निर्विवाद सत्य है कि यथार्थवाद सत्य की प्रवाहमयी मानवधारा में एक प्रधान मोड है।

यथार्थवाद का प्रमुख गुण अवतारवाद का खंडन है। यह मानव एवं उसके मस्तिष्क को इस संस्कृति के क्रियाकलापों एवं व्यवस्थाओं में सन्निहित कर उन्हें उसका उचित स्थान प्रदान करता है। यह एक ओर तो भौतिकता को आदर्शवादी से मुक्त करता है और दूसरी ओर उन्हें चेतन जीवन का आधार देता है। यथार्थवाद मस्तिष्क को ऐंद्रजालिक विद्रूपताओं से मुक्त करता है और इसके मूल्यों की रक्षा करता है।

प्रसिद्ध अंग्रेजी कथाकार और आलोचक हेनरी जोंस ने कथात्मक विधाओं के चित्रण पर विशेष बल दिया है। उसका निश्चित मत यह है कि कोई भी लेखक तब तक किसी उत्कृष्ट कथाकृति की रचना नहीं कर सकता, जब तक उसमें सत्य का विवेक न हो। परंतु इसके साथ ही वह यह भी कहता है कि यह एक कठिन कार्य है। वह यह निर्देश करता है की कथाकार को यथार्थ की खोज अपने विश्व क्षेत्रीय जीवन में करनी चाहिए। वह यथार्थ को एक पक्षीय अथवा एकात्मक नहीं मानता। इसके अतिरिक्त वह यथार्थ को बहुरूपी स्वीकार करता है- “कथा साहित्य के समग्र रूप पर विचार करते हुए वह यह भी कहता है कि यथार्थता का वातावरण किसी कथाकृति का ऐसा केंद्रीय गुण है, जिस पर अन्य सभी गुण निर्भर करते हैं। मेरे विचार में यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक को विवरणों की सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें।"[6]

जॉर्ज लुकाच के अनुसार- “यथार्थवाद मिथ्या तथा मिथ्या व्याक्तिपरकता के बीच का कोई मध्य मार्ग नहीं है, वरन इसके विपरीत वह हमारे समय की भूल-भुलैया में बिना किसी नक्शे के भटकनेवाले लोगों के द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत किए गए प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचाने वाला सही रास्ता है ।"[7]

भारतीय साहित्यकारों ने भी यथार्थवाद पर व्यापक रूप में विचार किया है। यथार्थवाद के संबंध में प्रेमचंद की धारणा है कि यथार्थवाद चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है । उसे इससे कुछ मतलब नहीं है कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुछ चरित्र का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियों एवं खूबियों को दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं और चूँकि संसार में नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत हुआ करता है । नेक आदमी धक्के खाते यातनाएँ सहते हैं, मुसीबतों को झेलते हैं, अपमानित होते हैं । उनके नेकी का फल उल्टा मिलता है । प्रकृति का नियम विचित्र है ।

प्रेमचंद जी ने यथार्थ को साहित्य में महत्वपूर्ण माना है तथा अनुभूति की यथार्थता पर बल दिया है । उनके विचार से साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो । जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो । जिसमें दिल पर, दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण उसी अवसर में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों । इसी संदर्भ में उनका यह मत महत्वपूर्ण है- “यथार्थवाद में हमारी दुर्बलताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्रण होता है और इस तरह वह यथार्थवादी को निराशावादी बना देता है । मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है । हमको अपने चारों ओर बुराइयाँ नजर आने लगती हैं ।"[8]

इस संबंध आचार्य जयशंकर प्रसाद जी का विचार उल्लेखनीय है । उनके अनुसार यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात । उसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता है और वेदना की अनुभूति आवश्यक है । लघुता से मेरा तात्पर्य है कि साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुख और अभावों का वास्तविक उल्लेख । इस संबंध और एक उत्कृष्ट चिंतन एवं लेखक आचार्य नंददुलारे वाजपेई के दृष्टि यहाँ है- “यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता का समर्थक है । वह समष्टि की अपेक्षा वस्तु जगत से है ।"[9] वास्तव में यथार्थवाद एक जीवन दृष्टि है । जिसका प्रभाव साहित्य के विकास पर पड़ता है । महान साहित्य और कला सदानिर्विकल्प रूप से जीवन की वास्तविकता को ही प्रतिबिंबित करती है । अतः उसकी एकमात्र कसौटी भी उसका यथार्थवाद है ।"[10]

यथार्थवाद का अपना शिल्प भी होता है और वह साहित्य तथा कला की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है । वास्तव में यथार्थवादी आंदोलन के उद्भव की कोई निश्चित तिथि नहीं है । साहित्य और कला रचना की

प्रधान प्रेरक दृष्टि और एक सशक्त आंदोलन के रूप में इसका विकास प्रधान फ्रांस की सन् 1830 की क्रांति के पश्चात हुआ। स्वच्छंदतावाद से यथार्थवाद अधिक दीर्घजीवी रहा।

वस्तुतः यथार्थवाद से अनेक विचारधाराएँ जुड़ी है। इनमें से अनेक यथार्थवाद से प्रभावित हैं और उनके अनेक रूपों ने यथार्थवाद को प्रभावित किया है। इनमें से अतियथार्थवाद के बारे में यह मान्यता है कि यह यथार्थवाद का ही अतिवादी रूप है और यथार्थवाद ने यदि साहित्य को एक नई दृष्टि दी है तो अतियथार्थवाद ने व्यवहारिक क्षेत्र में उसके आरोपण की संभावनाएँ उपस्थिति की है। प्रकृतवाद भी यथार्थवाद से भौतिक समानता रखता है। प्रकृतवादी परंपरा का प्रारंभ साहित्य में बीसवीं शताब्दी से माना जाता है। मार्क्सवाद का भी यथार्थवाद के विकास तथा वर्तमान रूप निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान है। मनोविज्ञान ने भी यथार्थवाद के रूप को सुधारने में एक अनिर्वचनीय कार्य किया है। साहित्य जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है। जीवन का विकास मनोविकारों पर आधारित है और मनोविकारों का आधार मनोविज्ञान है। यहाँ यथार्थवाद के प्रमुख रूपों का परिचय दिया जा रहा है।

**आलोचनात्मक यथार्थवाद** : 19वीं शताब्दी के रचनाकार प्रायः आलोचनात्मक यथार्थवाद के अंतर्गत आते हैं। आलोचनात्मक यथार्थवाद बस यथार्थवाद का अगला कदम ही है। यथार्थवाद के लिए तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि की अपेक्षा होनी चाहिए। आलोचनात्मक यथार्थवाद का चित्रण करने वाला लेखक भी यथार्थवाद की ही सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। अपनी दृष्टि भी तटस्थ व निरपेक्ष रखता है, पर तटस्थ एवं निरपेक्ष दृष्टि से जीवन और समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण करके ही संतोष नहीं कर लेता, वरन् समाज की विकृतियों, विषमताओं एवं असमानताओं पर तीव्र प्रहार कर कटु आलोचना भी करता है। आलोचनात्मक यथार्थवादी लेखक किसी वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न नहीं थे, जो समाज विकास की क्रांतिकारी दिशा का बोध करा सकते हैं या पूंजीवादी चरित्र के रचनात्मक पक्ष से परिचित करा सकते या नई शक्तियों के द्वारा पूँजिवादियों के इरादों को नाकाम बना सकते हैं। पर यह लेखक इतना कर सकने में अवश्य समर्थ हुए कि इन्होंने आक्रांत के समक्ष अपनी कला चेतना व कला दृष्टि को समर्पित नहीं होने दिया। ये गहराई के साथ वस्तुगत तो यथार्थ को देखते रहे। आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों का क्षेत्र न केवल व्यापक है, वह बहुआयामी भी है। सत्य के प्रति अप्रतिहज्ञा, निष्ठा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, समग्र आकलन, वस्तुगत यथार्थ का मार्मिक विश्लेषण, अंतर्वेदी दृष्टि, व्यवस्थाजन्य विकृतियों का निर्मम उद्घाटन, चित्रण की समग्रता, उसका पारदर्शी स्वरूप, गहरी सामाजिक निष्ठा तथा आकृतिम मानवीय संवेदना, यांत्रिकता का तिरस्कार, सजीव और संपूर्ण मानव चरित्र के अंतर्गत टाइप की दृष्टि और उसे दोहरी भूमिका पर उस वयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साथ चित्रित करना आलोचनात्मक यथार्थवाद का रूप हमें प्रेमचंद, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, विश्वंभर नाथ शर्मा, कौशिक, सुदर्शन जैसे कहानिकारों की कहानियों में दृष्टिगत होता है।

**सामाजिक यथार्थवाद** : सामाजिक यथार्थवाद वास्तव में साहित्य के लिए एक उपयोगितावादी दृष्टिकोण है। इसकी पृष्ठभूमि में पूंजीवाद के विनाश तथा समाजवाद के विकास का उद्देश्य निहित है।

समाजवादी यथार्थवाद का उद्भव रूसी साहित्य के क्षेत्र में क्रांति के परवर्ती काल में हुआ था। उस समय साहित्य में निम्न वर्गों का व्यापक चित्रण होने लगा था और उनके संघर्ष को प्रधानता दी जा रही थी। इसी प्रकार का साहित्य मार्क्सवाद के सिद्धांतों से विशेष प्रभावित था और इसे वहाँ समाजवादी यथार्थवाद की संज्ञा दी जा रही थी। मार्क्सवादी सिद्धांतों पर यदि हम विचार करें तो यह ज्ञात होगा कि इनकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वरन् वह समकालीन राज्य सत्ता से नियंत्रित होते हैं। मार्क्स के साथ काड्वेल भी साहित्य का मूल आधार आर्थिक ही मानता है। कार्लमार्क्स के सिद्धांतों ने सामाजिक यथार्थ को प्रभावित किया। पाश्चात्य साहित्य में विचारकों का यह कदम ऐसा संगठित हुआ, जिसने मार्क्स की मान्यता व व्यवहारिक आरोपण साहित्य में किया। मार्क्स का यथार्थवाद स्पष्ट करता है कि संपूर्ण समाज दो वर्गों में विभाजित है। शोषक और शोषित। शोषित वर्ग को ही मार्क्स सर्वहारा वर्ग कहता है और यथार्थवादी साहित्य के रूप में केवल उसी साहित्य को मान्यता देता है, जिसने सर्वहारा वर्ग की समस्याओं और परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। इस दृष्टि से समाजवादी यथार्थवाद का आधार मार्क्स की उपयुक्त मान्यताएँ हैं। समाजवादी यथार्थवाद समष्टि का चित्रण करना साहित्य में अनिवार्य समझता है।

डॉ. सुरेश सिन्हा का विचार है कि सामाजिक यथार्थवाद समष्टि को मान्यता देता है व्यष्टि को नहीं। उसके मतानुसार समाजवादी यथार्थवाद साहित्य और कला में यथार्थवादी चित्रण पर बल देता है। वह मानवीय शक्तियों के प्रति आग्रहशील है। वह मानवीय प्रगति की अवरोधक शक्तियों का रहस्योद्घाटन करता है। उसका कार्य अतीत काल का व्याख्यात्मक चित्रांकन मात्र ही नहीं, अपितु वर्तमान की क्रांतिकारी सफलताओं को एक सूत्र में आबद्ध करने में सहायक होना और एवं भविष्य के लिए महान समाजवादी उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना भी है। समाजवादी यथार्थवाद व्यापक दृष्टिकोण को अपनाता है और इसकी क्षमता उन्हीं लेखकों से व्याप्त हो सकती है, जो वर्तमान को भविष्य के संदर्भ में मूल्यांकित कर सकने में समर्थ है। यही दृष्टिकोण वास्तव में समाजवादी यथार्थवाद की आधारशिला होनी चाहिए।"[11]

समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थवादी चिंतन तथा यथार्थवादी कला की वह जीवत धारणा है, जो एक ओर प्रकृतवाद से भिन्न है तथा मनुष्य को मूलतः आदिम प्रवृत्तियों से अनुशासित तथा परिचालित मानते हुए उनके अब तक के समूचे बौद्धिक और भावनात्मक विकास की अवमानना करता है। दूसरी ओर आलोचनात्मक यथार्थवाद से भी विशिष्ट है जो अपनी जीवत कला वस्तुगत यथार्थ के ईमानदार चित्रण, उसकी अमानवीय भूमिका के प्रति कड़ा आलोचनात्मक रुख अपनाने एवं जन सामान्य के प्रति संवेदनशील होने के बावजूद समाजवादी यथार्थवाद की उस क्रांतिकारी रचनात्मक समझ से शून्य है जो वर्तमान के विकृत यथार्थ के बदलने का न केवल रास्ता खुल जाती है, बल्कि उस परिवर्तन को उसकी सारी संभावनाओं के साथ मूर्त भी करती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी स्वतंत्रता पूर्व विकास युगों की ही भाँति सामाजिकता की प्रवृत्ति प्रधान रही हैं। किंतु इस युग की सामाजिक कहानी अपने कथ्य में पिछले युग से भिन्न है। बदलते हुए युग के साथ समाज की प्रवृत्तियों और समस्याओं में जो बदलाव आया है, हिंदी कहानी ने उसे आत्मसात किया है। इस

काल में प्रायः सभी लेखकों ने सामाजिक विषयों को आधार बनाकर कहानियाँ लिखीं। अमृतलाल नागर, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, श्रीकांत, शैलेश, मटियानी, उषा प्रियंवदा, कमल जोशी, नरेश मेहता आदि ने सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण अपनी कहानियों में किया है।

**प्रकृतवाद यथार्थवाद :** वास्तव में प्रकृतवाद के अंतर्गत वे रचनाएँ आती थीं, जो प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखने की चेष्टा करके यथार्थवाद का रूप प्रस्तुत करती हो। विशेष रूप से प्रकृतवाद 19वीं शताब्दी के उन कलाकारों द्वारा प्रतिपादित मत है, जो मानव को प्रकृत रूप में अंकित करना चाहते थे। मानववादी अथवा धार्मिक रूप नहीं है।

प्रकृतवादी साहित्य जीवन को उसके वास्तविक नग्न रूप में उपस्थित करता है। वह किसी भी वस्तु को साहित्य के लिए गोपनीय नहीं समझता। आचार्य नंददुलारे वाजपेई ने प्रकृतवाद को यथार्थवाद के नाम पर विकसित हुई नवीन शैली माना है। वे लिखते हैं- क्रमशः जीवन के स्वस्थ उपकरणों का अभाव दिखलाई पड़ने लगा। सत्य और यथार्थ के नाम पर जो रचनाएँ प्रस्तुत की गईं उनमें प्रायः विकृत और असंतुलित चरित्रों की जीवन गाथा रहा करती थी।"[12] प्रकृतवाद एक प्रकार से औपचारिक प्रकृतियों का साधन है, जिसके द्वारा हम पड़े हुए बीच के प्रतिरोधों के विषय में उसकी सीमा तक सोचना आरंभ करते हैं तथा आधुनिक प्रतिक्रियाओं को साहित्य में रखकर कला का रूप प्रदान करते हैं।

आधुनिक महानगरों में जो सभ्यता विकसित हो रही है, वह इतनी कृत्रिम, अत्याचारी और धम भी है कि उसमें जब तक कटु यथार्थ का नग्न स्वरूप साहित्य में प्रस्तुत नहीं किया जाएगा तब तक उनसे समाज को मुक्ति नहीं मिलेगी। यह बात भी अन्य आधुनिक वादों की भाँति पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप हिंदी में आया है। यूरोप में प्रकृतवादी साहित्य के अंतर्गत मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को अनावृत रूप में ही प्रस्तुत करने पर बल देता है और उसके इसी दृष्टिकोण के कारण प्रकृतिवाद के विरोधी, लज्जाहीनता, नग्नता और अनैतिकता का आरोप लगाते हैं। सैद्दांतिक दृष्टिकोण से प्रकृतवाद, आदर्श और सांस्कृतिक आदि रूढ़ सिद्धांतों को निरर्थक बतलाता है। डॉक्टर सुरेश सिन्हा के मतानुसार- "ऐतिहासिक रूप से प्रकृतवाद यथार्थवाद की ही एक विकसित शैली है और उसके उचित एवं क्रमागत रूप में ही उसे स्वीकार किया जाता है। इसकी व्याख्या ज़ोला ने सन् 1880-81 के मध्य प्रकाशित अपने अनेक लेखों में की है।"[13]

साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद और प्रकृतिवाद दोनों को पर्याप्त सीमा तक एक-दूसरे का पर्यायवाची स्वीकार किया जाता है। यथार्थवाद साहित्य चित्रण पर बल देता है, जबकि प्रकृतवाद विशुद्ध भौतिकता का समर्थक है। इसलिए कभी यह कहा जाता है कि यथार्थवाद का विकृत रूप ही प्रकृतिवाद है। प्रकृतवादी चित्रण की प्रवृत्ति को हिंदी कहानी में लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन, शर्मा, उग्र जैसे आदि की ही कुछ कहानियाँ इस अर्थ में रखी जा सकती हैं।

**अतियथार्थवाद :** अतियथार्थवाद का चरम लक्ष्य व्यक्तित्व का चित्रण करना एवं भाव प्रकाशन करना है । वह प्रचलित नैतिक मान्यताओं को अस्वीकृत करता है । उसकी नैतिकता उसके विचार से आडंबरपूर्ण एवं थोथी होती है । अतियथार्थवाद की मान्यता के अनुसार चित्रण में कथाकार को पूर्ण स्वतंत्रता हो उस पर मर्यादाओं एवं नैतिकता के कोई बंधन न हो । अतियथार्थवाद हृदय की भावनात्मक गति करता है । यह बौद्धिकता के विरुद्ध है, किंतु साथ ही भावुकता के प्रति भी आग्रहशील नहीं है । यदि अतियथार्थवाद को उसके आधार बिंदु तक ले जाना चाहे तो वे मूलभूत तत्व प्राप्त होंगे जिस पर किसी भी उपयोगी भित्ति का निर्माण किया जा सकता है ।

अतियथार्थवादी ने असंतुलन एवं असंगति के ऐसे बीभत्स चित्र उपस्थिति किए कि मानव मात्र विकृतियों का पुतला बन गया । फलस्वरूप यथार्थवादी स्कूल पर अनेक दोषारोपण किए जाने लगे और उनके उत्तर भी दिए गए । पर सबसे भीषण आरोप यह किया गया कि अतियथार्थवाद हिंसा और न्यूरोमांटिक प्रवृत्तियों को प्रश्रय देता है । यह वर्तमान नैतिकता को तिरस्कृत करता है, क्योंकि उसके विचार से वह रूढ़ी और आडंबर से युक्त है । वह प्रेम और स्वतंत्रता पर आधारित नैतिकता को प्रमुखता प्रदान करता है । इस संबंध में डॉ. सुरेश सिन्हा का विचार है कि- “अतियथार्थवाद किसी भावुक मानवतावाद से संबंधित नहीं है । वह अत्यंत कठोर ढंग से नियंत्रित मनोवैज्ञानिकवाद है और यदि वह प्रेम और सहानुभूति जैसे शब्दों का प्रयोग करता है तो इसीलिए कि व्यक्ति के आर्थिक एवं वासनात्मक जीवन को उसके विश्लेषण ने उसे इन शब्दों के शालीनतापूर्वक प्रयोग करने का अधिकार दिया है और इस प्रयोग में किंचित मात्र भी भावुकता को स्थान नहीं होता है । अतियथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि सभी व्यक्तियों के विचारों की समानता होती है और वह मनुष्य के मध्य व्यवधान को समाप्त करने का प्रयत्न करता है । वह मानता है कि मनुष्य और उसकी कार्य प्रक्रिया को अलग नहीं किया जा सकता । वह मनुष्य की स्वतंत्रता में विश्वास रखता है और अपने पूर्ण सामर्थ्य से इस उद्देश्य प्राप्ति का प्रयत्न करता है कि वह इस प्रक्रिया में पराजयवाद और गुमराह करने वाली प्रवृत्ति और शोषण का विरोध करता है ।"[14] अतियथार्थवाद का स्वरूप इस काल में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, ऋषभ आचरण जैन, पांडेय बेचन, शर्मा, उग्र जैसे आदि कहानिकारों की कृतियों में देखा जा सकता है ।

**मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद :** मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, यथार्थवाद का वह रूप है, जिसका विकास आधुनिक साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के समांतर हुआ है । स्थूल रूप से मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद के विपरीत मनुष्य की वयक्तिक चेतना की विवृत्ति करता है। वह उसके सष्टिगत महत्व और मूल्यों को अस्वीकारता नहीं है । फिर भी वह बाह्य सत्ता का विश्लेषण करने के स्थान पर उसके अवचेतन और अचेतन तथा अवचेतन मन के रहस्यों को उद्घाटित करता है । मानव मन मनोविज्ञान का विश्लेषण है। यही मनोभावों या मनोविज्ञान का आश्रय मनोविकारों का स्रोत एवं अनुभूतियों का कोष है। साहित्य इन्हीं मनोविकारों और अनुभूतियों की रोचक कथा है ।

साहित्यकार जब रचना करता है तो उसके अंदर की भावनाएँ ही साहित्य में व्यक्त होती है । आई. ए. रिचर्डस के अनुसार- “साहित्य और मनोविज्ञान दोनों भावात्मक एकता के प्रस्तोता हैं । साहित्य का

उद्देश्य मन की वृत्तियों को संगठित कर उन में सामंजस्य स्थापित करना है ।"[15] साहित्य भी जीवन की मूल प्रेरणाओं का अध्ययन करता है । जीवन की मूल प्रेरणा ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तियाँ हैं, जो कृतियाँ जीवन की मूल और सब क्रियाओं का स्त्रोत है । वे ही साहित्य को जन्म देती हैं । जीवन की मूल प्रेरणा व उनके संबंध में विचार उपनिषद काल से चले आ रहे हैं । बृहदारण्यक उपनिषद में पुत्रषणा, विश्लेषण तथा लोकेषणा (पुत्र की चाह, धन की चाह तथा यश की चाह) मनोविश्लेषण शास्त्र का उदय यह भी इन्हीं प्रेरणाओं के अध्ययन के लिए हुआ है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल रागों या मनोवेगों का परिष्कार करते हुए सृष्टि के साथ रागात्मक संबंध स्थापना को साहित्य के उदात्त रूप की संज्ञा देते हैं ।"[16] स्वातंत्र्योत्तर रचनाकारों ने मनोवैज्ञानिक रचनाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं । इनमें से अमृतलाल नागर, अज्ञेय, मुक्तिबोध, मोहन राकेश, फणीश्वर नाथ रेणु, कमलेश्वर, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी आदि ने मनुष्य की विभिन्न कुंठाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।

साहित्य में यथार्थ या यथार्थवाद का निशान नवीनतम, यह वाद भी है और अपने आप एक साहित्यिक विधा भी है । 18 वीं सदी के बाद यह विधा साहित्य में तेजी से बढ़ने लगी । यह पूर्ण रूप से पश्चिमी के देन न कहने पर भी इसका आविर्भाव तो पश्चिमी देश में हुआ, मात्र नहीं पूरे विश्व के विभिन्न साहित्यिक जगत का, यह अगले शताब्दी तक प्रभावित एवं प्रेरित करने में सक्षम रहा ।

## संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. साहित्य सिद्धांत, डॉक्टर राम अवध द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 115-116
2. हिंदी कहानी का उद्भव और विकास, डॉ. सुरेश सिन्हा, पृष्ठ संख्या 218
3. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ संख्या 43
4. European Realism (Prefaces) : George Lukes, P.No 06
5. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉक्टर त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ संख्या 46
6. लेटर रिटेन टू मिम मागरिट हार्टनेस उद्धव : शिवकुमार मिश्र कृत यथार्थवाद, पृष्ठ संख्या 10
7. स्टडीज़ इन यूरोपीयन रियलिज्म : जॉर्ज लुकास, पृष्ठ संख्या 6
8. कुछ विचार, मुंशी प्रेमचंद 1961, पृष्ठ संख्या 49
9. आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेई-3, पृष्ठ संख्या 420
10. शिवदान सिंह चौहान संपादकीय 1952 उद्धत, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवन सिंह पृष्ठ संख्या 491
11. नई कहानी की संवेदना, डॉ. सुरेश सिन्हा 1996, पृष्ठ संख्या 175-176

12. आधुनिक साहित्य, आचार्य नंददुलारे वाजपेई, पृष्ठ संख्या 184
13. हिंदी कहानी में यथार्थवाद, डॉ. रत्नाकर पांडेय पृष्ठ संख्या 16
14. नई कहानी की मूल संवेदना, डॉक्टर सुरेश सिन्हा 1963, पृष्ठ संख्या 182
15. प्रिंसिपल ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, आई. ए. रिचर्ड्स, पृष्ठ संख्या 46
16. चिंतामणि कविता क्या है, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 141

**********